ISSN 2348-3857

मेवाड़ की लोक संस्कृति व पर्यटन

डॉ. सुशीला शक्तावत

सह आचार्य, इतिहास

जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

मेवाड़ का अतीत भारत के गौरव और गरिमा का स्वर्णिम इतिवृत है। यह $23^0 49'$ से $25^0 28'$ उत्तरी अक्षांश और $73^0''$ से $75^0 49'$ पूर्वी देशान्तर के बीच बसा हुआ पर्वतीय प्रदेश हे। मेवाड़ में वीरता, साहित्य सर्जन, धार्मिक-रुचि, सम्पन्नता और सांस्कृतिक वैभव के एक साथ दर्शन होते हैं। विश्व में ऐसी भूमि शायद ही कहीं हो जहां, वीरता, साहित्य सर्जन, धार्मिक-रुचि, सम्पन्नता और सांस्कृतिक वैभव के एक साथ दर्शन होते हों, ऐसी पवित्र भूमि का भौगोलिक व सांस्कृतिक इतिवृत यहां प्रस्तुत है। इसी परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत शोध प्रपत्र का उद्देश्य मेवाड़ प्रदेश की संस्कृति एवं सभ्यता के ऐतिहासिक प्राकृतिक स्वरूप से अवगत कराना है जिससे यह प्रदेश राजस्थान के पर्यटन मानचित्र में विशिष्ठ स्थान स्थापित कर सके।

सभ्यता एवं संस्कृति का प्रत्यक्ष साक्षात्कार पर्यटन का प्राथमिक उद्देश्य है। वस्तुत: पर्यटन के माध्यम से हम न केवल स्थान विशेष के ऐतिहासिक प्राकृतिक स्वरूप से परिचित होते हैं, वरन लोक-संस्कृति के दर्शन भी होते हैं। पर्यटन शिक्षा का एक सशक्त माध्यम है।[1] मेवाड़ क्षेत्र में कहीं तो पर्यटन स्थल पौराणिक और एतिहासिक महत्व के हैं तो कहीं धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व के स्थल हैं। कहीं-कहीं तो प्राकृतिक सौन्दर्य से सम्पन्न ऐसे अद्भुत और आकर्षक स्थल हैं जिन्हें देखकर पर्यटक अभिभूत हो जाता है। पर्यटन स्थल का महत्व जहां वर्तमान युग में बढ़ता जा रहा है वहीं स्थानीय पर्यटन स्थल की लोक संस्कृति की जानकारी आवश्यक है। इसी मेवाड़ भूमि ने भारत की सांस्कृतिक विरासत को संजोऐ रखा है। मेवाड़ कुछ ऐसी प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक विशिष्टताओं एवं विविधताओं से युक्त है जो मानव मन को सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। मेवाड़ प्रदेश अपनी नैसर्गिक छटा, अद्वितीय ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक धरोहर, विभिन्न जनजातियां, रंग-बिरगां भौगोलिक परिदृश्य, चित्र-विचित्र जीव-जन्तु, रंग-बिरंगे पक्षी, विविध वनस्पतियां, अजीबो गरीब लोक जीवन, विविध प्रकार के लोकाभूषण, लोकगीत, लोकनृत्य, लोकोत्सव एवं भव्य रमणीय स्थलों से सुशोभित है। यह क्षेत्र हर प्रकार की रुचि, प्रवृति, प्रकृति और दृष्टि वाले आगन्तुकों को भरपूर आनन्द की अनुभूति देने में समर्थ है। यहां एक और पवित्र धार्मिक स्थल तो दूसरी और अनेक प्राकृतिक, पुरातात्विक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्व के स्थल एवं धरोहर विद्यमान हैं। यहां के महान अतीत को यहां के विभिन्न स्थानों, मेलों, त्यौहारों एवं विशेष अवसरों पर देखा एवं परखा जा सकता है। चारों ओर अपूर्व सौन्दर्य से भरा यह क्षेत्र प्रकृति प्रेमियों के लिए अपूर्व आनन्द का सृजनकर्ता हो सकता है। संस्कृति एक व्यापक शब्द है, जिसमें लोक संस्कृति के आदर्श और मूल समाहित रहते हैं। यह लोक स्तर पर अंकुरित होती है, पनपती और फैलती है तथा पूरे लोक को संस्कारित करती है। किसी भी स्थान या क्षेत्र की लोक संस्कृति वहां के लोकमानस और लोकाचरण से निर्मित होती है। लोक संस्कृति के अंतर्गत लोकगीत, लोकनृत्य, लोकचित्र, लोकोत्सव, लोकरंजन, लोकाभूषण आदि समाहित हैं। मेवाड़ी लोक संस्कृति के विविध रूप अपने आप में एक अद्भूत आकर्षण समाहित किये हुए है जो पर्यटक एवं सैलानियों के आकर्षण का केन्द्र हैं।

उदयपुर में देवीलाल सामर ने भारतीय लोक कला मण्डल की स्थापना कर इन कलाओं की सुध ली और इनके उन्नयन, विकास और प्रचार-प्रसार का मार्ग प्रशस्त किया। पहली बार सामरजी ने प्रदर्शनधर्मी कलाओं की प्रस्तुतियों द्वारा यह तथ्य उद्घाटित किया कि हमारी पारम्परिक कलाएँ हमारी जीवन-संस्कृति की समृद्धि की सूचक है यदि इनकी रक्षा नहीं की गई तो हम अपनी सांस्कृतिक विरासत के साथ जीवन की रंगीनियों से

हाथ धो बैठेंगे।[2] इस विचार को मूर्त रूप देने के लिए सामरजी ने पहली बार लोकगीतों का समारोह आयोजित किया। पहली बार भारतीय कठपुतली समारोह बुलाया। पहली बार लोक कलाकारों का प्रशिक्षण शिविर लगाया। पहली बार लोकानुरंजन समारोह का आयोजन करने का परिणाम यह हुआ कि सारे देश में इन कलाओं का महत्व समझा जाने लगा और जगह-जगह कला-संस्थाएं खुलीं। कलाकारों के दल गठित हुए। सन् 1965 में बुखारेस्ट में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय कठपुतली समारोह में सामरजी ने भारतीय प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया और कठपुतली के पारम्परिक अमरसिंह राठौड़ नामक खेल की नवीन प्रस्तुति देकर सबको चकित कर दिया। इस खेल ने प्रथम पुरूस्कार प्राप्त किया, जिससे पूरा विश्व धागा पुतलियों के करिश्माई तंत्र का लोहा मान बैठा।[3] सामर जी ने मेवाड़ के भवाई जाति के कलाकारों में प्रचलित मटकों के सहारे किये जाने वाले भवाई नृत्य तथा कामड़ जाति की महिलाओं द्वारा बाबा रामदेव की आराधना में किये जाने वाले तेरताल नृत्य को अपने सैंकड़ों प्रदर्शनों द्वारा जो लोकप्रियता दिलाई उससे दुनियाभर में इन नृत्यों के सम्मोहन का कीर्तिकलश बोल उठा। [4]

लोकोत्सव

किसी भी अंचल के लोकोत्सव लोक के वे उत्सव हैं जो लोक द्वारा लोकहित के लिये आयोजित किये जाते हैं। ऐसे उत्सवों के समय समस्त लोग एक विशेष कर्म से गतिशील होकर अद्भूत एकता की बानगी पेश करते हैं। लोकोत्सव में रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान, रीति-रिवाज और चाल-ढाल की झाँकी देखने को मिलती है। यदि वर्तमान लोकजीवन में मेवाड़ी लोक-संस्कृति की तस्वीर देखनी हो तो वह लोकोत्सव के समय देखने को मिलती है।

मेवाड़ के प्रमुख लोकोत्सव व मेले-मेवाड़ के प्रमुख लोकोत्सवों व मेलों को पयर्टन से जोड़कर इनके महत्व को बढ़ाया जा सकता है तथा पर्यटन विकास में गति प्रदान की जा सकती है। लोकोत्सव के समय मेवाड़ी लोक संस्कृति का आदर्श रूप देखने को मिलता है। प्रचलित सामाजिक परम्परा के अनुसार यहां सभी त्यौहार मनाये जाते हैं - दीपावली, होली, रक्षाबन्धन, दशहरा यहां के प्रमुख त्यौहार हैं। गणगौर, हरियावली अमावस्या, सुखिया सोमवार और जल-झूलनी ग्यारस यहां के स्थानीय त्यौहार हैं। इन तीनों त्यौहारों पर मेले भरते हैं। अक्षय तृतीया, संवत्सरी, अनन्त चतुर्दशी, महावीर जयंती जैनियों के त्यौहार हैं।

मेवाड़ में मेले पग-पग पर भरे जाते हैं। छोटे-बड़े मेलों की संख्या बहुत है। कुछ प्रमुख मेले इस प्रकार हैं -[5]

क्र.सं.	मेला	मेला दिवस	मेला स्थान
1.	केशरिया जी का मेला	चेत्र कृष्णा 8	ऋषभदेवजी
2.	भंवरमाता का मेला	चेत्र नवरात्रि	छोटी सादड़ी
3.	गणगौर का मेला	चेत्र शुक्ला 3	गोगुन्दा
4.	सीतामाता मेला	वैशाखी पूर्णिमा	बड़ी सादड़ी
5.	झामेश्वर महादेव का मेला	वैशाखी पूर्णिमा	उदयपुर
6.	तेजाजी का मेला	वैशाखी पूर्णिमा	तासोल
7.	केरेश्वर महादेव का मेला	वैशाखी पूर्णिमा	कानोड़
8.	मातृकुण्डिया का मेला	वैशाखी पूर्णिमा	मातृकुण्डिया
9.	हरियाली अमावस्या का मेला	श्रावणी अमावस्या	उदयपुर
10.	धुणीमाता का मेला	श्रावणी अमावस्या	डबोक
11.	ठण्डी राखी का मेला	भाद्रपद कृष्णा-1	अमरखजी(उदयपुर)
12.	चारभुजा का मेला	भाद्रपद शुक्ल-11	गढ़बोर
13.	सांवरिया जी का मेला	भाद्रपद शुक्ल-11	सांवरियाजी(चित्तौड़)
14.	गुप्तेश्वर महादेव का मेला	भाद्रपद पूर्णिमा	एकलिंगपुरा- तितरड़ी (उदयपुर)
15.	झांतलामाता का मेला	आश्विन नवरात्रि	पाण्डोली
16.	आवरीमाता का मेला	आश्विन नवरात्रि	आवरीमाता(चित्तौड़)
17.	अन्नकूट का मेला	कार्तिक शुक्ला-1	नाथद्वारा

18.	जैन मन्दिर मेला	कार्तिक पूर्णिमा	सवीनाखेड़ा
19.	करेड़ा पारसनाथ मेला	पोष कृष्णा-10	भूपालसागर
20.	अड़िन्दा पारसनाथ मेला	पोष कृष्णा-10	बाठेड़ाकलां
21.	शिवरात्री का मेला	फाल्गुन कृष्णा-14	एकलिंगजी
22.	हरणी महादेव	शिवरात्री	भीलवाड़ा
23.	परशराम महादेव	शिवरात्री	गढ़बोर,राजसमन्द के पास
24.	फरारा महादेव	शिवरात्री	राजनगर
25.	जरगा जी	शिवरात्री	सायरा (गोगुन्दा)

लोकरंजन का सामान्य अर्थ मनोरंजन से है। मनोरंजन का अर्थ 'मन का रंगना'। लोकरंजन किसी एक व्यक्ति का न होकर लोक का होता है वह समय के अनुसार बदलता रहता है। लोकरंजन का सामूहिक रूप में विशेष अवसरों पर आयोजन किया जाये एवं विविध क्षेत्रों के कलाकारों को बुलाकर ऐसे बड़े आयोजनों की परम्परा को शुरू कर पर्यटन हेतु आकर्षण उपलब्ध कराया जा सकता है।

गवरी लोकनृत्य

यहां के आदिवासी भीलों में प्रचलित गवरी नाट्य में जो नृत्य, संगीत, स्वांग, खेल-तमाशे और लीला रूप देखने को मिलते हैं उनमें पूरे भारतीय लोकनाट्य शास्त्र के तत्व गुंफित मि लेंगे। इसका तानाबाना शिव और भस्मासुर के पौराणिक आख्यान से जुड़कर अधुनातन परिवेश से प्रभावना लिये हैं।[6] **गवरी** सम्बन्धी कथा - किवदंतियों में ऊनवास, देवलऊनवा, बड़ल्या हींदवा, मानसरोवर, धारनगर, जावड़ आदि का जो उल्लेख आता है, वह साधार है, कपोल कल्पित नहीं। ऊनवास प्रसिद्ध रणक्षेत्र हल्दीघाटी के पास एक छोटा सा गाँव है। उदयपुर से यह लगभग 50 किलो-मीटर दूर है। यहाँ पीपलाज माता का एक मन्दिर है। इसे देवल मालिया भी कहते हैं। पीपलाज देवियों में बड़ी देवी मानी जाती है। मंदिर के प्रवेश द्वार के बांई ओर की ताक में 17 पंक्तियों का एक शिलालेख लगा हुआ है। वि.सं. 1016 का यह शिलालेख काले पत्थर का है जो कुटिल लिपि में लिखा गया है।

बड़ल्या हींदवा

ऊनवास से दो किलोमीटर दूर बड़ का वह वृक्ष है जिसे देवी पाताल से सर्व प्रथम यहाँ लाई थीं। यही बड़ बड़ल्या हींदवा के नाम से जाना जाता है। ऐसा माना जाता है कि पहले यह बड़ बारह बीघे में फैला हुआ था। थाली जितने बड़े इसके पत्ते तथा सुवर्ण रंगी इसकी कोंपले थीं। इसके कई शाखा-प्रशाखाएं थीं। इन्हीं शाखाओं के सहारे देवियां यहां झूला झूलती थीं तथा नाना प्रकार की क्रीड़ाएँ करती थीं। मेवाड़ में बड़ 'बड़ल्या' तथा झूला 'हींदा' कहलाता है।[7] बड़ल्या हींदवा से खमनोर लगभग पाँच किलोमीटर दूर पड़ता है। यहाँ, जहाँ गुलाब की खेती होती है, किसी समय मानसरोवर था। गुलाब की बाड़ियों वाला यह भाग आज भी 'मानसरोवर' कहलाता है।

होली के लोकानुरंजन

मेवाड़ में लोकानुरंजन की दृष्टि से होली का त्यौहार सर्वाधिक अनुरंजनपरक है। इस अवसर पर जितनी तरह की गैरें खेली जाती है, जितनी तरह के स्वांग निकाले जाते हं, सवारी-जुलूस देखने को मिलते हैं, उतने अन्यत्र किसी प्रदेश में देखने को नहीं मिलेंगे। उदयपुर की गणेशघाटी पर इलाजी का लीमड़ा (नीम) बड़ा प्रसिद्ध रहा है। यहाँ पहले एक घना नीम वृक्ष था। यहीं इलाजी की विशाली प्रतिमा थी। यहीं से इलाजी की भव्य सवारी निकलती थी। यह स्थान कई घटना किंवदंतियां लिये है। इलाजी लोकदेवता के रूप में होली पर पूजे जाते हैं। सीसारमा का क्षेत्र भी सीया यानी सीता माता की याद का धनी स्थल है । कहते हैं, यहीं सीता की अग्नि परीक्षा हुई थी। यहां के मंदिर में सीता की मूर्ति है जिसके दोनों हाथों में आग के गोले हैं। मेवाड़ की कुछ जातियों में सतीत्व की परीक्षा लेने हेतु हाथों में आज भी आग के गोले रखने की परम्परा विद्यमान है। लोकगीत भी इस बात के साक्षी हैं।[8]

कांगसिया नामक लोकगीत में कांगसिया चुराकर ले जाने वाली पणिहारिनों के लिए हथेली पर गर्म गोले रखकर चोरी का पता लगने का उल्लेख मिलता है। यथा -

धमण धमाई लूं, गोला तपाई लूं, ततो तेल तलाई लूं रे
अणी कांगसिया रे कारणिये म्हूं, मंदर धीज धराइलूं रे
पणिहार्यां लेगई रे, म्हारे छैल भंवर रो कांगसियो, पणिहार्यां लेगई रे ।

तलवारों की गैर

उदयपुर से कोई 35 कि.मी. दूर चित्तौड़ जाने वाली सड़क के किनारे मेणार नामक प्राचीन गांव अवस्थित है। यहां की तलवारों

की गैर बड़ी प्रसिद्ध है। यहां के बूढ़े कहते हैं कि इस गांव का प्राचीन नाम मनिहार था। यह सतयुग का गांव है जिसमें प्राय: मेनारिया लोगों की ही बस्ती है। यहां लगभग 500 घर मेनारियों ब्राह्मणों के हैं। मेनार की इस गैर के संबंध में वहां के निवासी घासीजी ने बताया कि इस गैर का बड़ा ठोस इतिहास है। मेवाड़ में तब 52 थाने थे, जो मुगलों के अधीन थे। इन थानों से मुगलों के आधिपत्य को हटाना था पर इसकी जिम्मेदारी कौन ले। कहते हैं, सबसे बड़ा थाना ऊंठाला (वर्तमान वल्लभनगर) का था जहां चूंडावत जेतसिंह ने अपना सिर किले में पहले पहुंचाकर हरावल (सबसे आगे) में रहने का अधिकार पाया। दूसरा थाना मेनार का था जहां मेनारियों ने अपने पराक्रम और बुद्धि-कौशल से मुगलों का नाश कर दिया। वह दिन आज ही का चेत्रवदी जमा बीज का दिन था। घासीजी ने बताया कि वह घटना अमरसिंह (1599 ई.) के समय की है। यहां तलवारों की गैर इसी घटना की स्मृति में खेली जाती हैं।[9]

घूमर नृत्य

घूमर गणगौर पर किया जाने वाला अत्यन्त ही लोकप्रिय नृत्य है जो पूरे राजस्थान में, सभी जातियों की महिलाओं में प्रचलित है। घूमर से तात्पर्य घूमने से है। यह नृत्य घूमते हुए गोलाई में किया जाता है। घूमने की यह क्रिया दो रूप लिये है। पहला रूप अपने स्थान पर अंग-प्रत्यंगों का संचालन किये घूमना तथा दूसरा पूरे मंच का चक्कर लगाना।[10]

भवई नृत्य

राजस्थान में लोकनृत्यों में भवाई नृत्य सर्वाधिक लोकप्रिय है। यह मूलत: मटका नृत्य है, किन्तु भवाई जाति में प्रचलित होने के कारण इसका भवई नाम पड़ गया। इस नृत्य की यही पहचान है कि नाचने वाला अपने सिर पर मटका लिये रहता है। मटके की यह संख्या एक से लेकर, एक के ऊपर एक करके तेरह-पन्द्रह तक होती है। मटका नाच में कलाकार तीव्र गति से नाचते हुए नाना प्रकार के करतब दिखाता है।

तेराताली नृत्य

कामड़ नामक एक विशिष्ट जाति प्रख्यात लोकदेवता बाबा रामदेव जी की उपासक होती है। रामदेव जी की आराधना में कामड़ रात-रात भर भजन तथा ब्यावले गाते हैं और कामड़ महिलाएं तेराताली का प्रदर्शन करती हैं।[12] तेराताली का प्रदर्शन तेरह मजीरों की सहायता से किया जाता है। तेरज मजीरों की निरन्तर चलती रहती संगीत लहरी में जमीन पर बैठे-बैठे तो कभी लेटे-लेट कामड़ महिला तेरह प्रकार के भावांग प्रस्तुत करती हैं।

नाहरों का स्वांग

भीलवाड़ा जिले का एक गांव है मांडल। यहां का नाहरों (शेरों) का नृत्य बहुत प्रसिद्ध है। इतिहास जुड़ने से यह नृत्य ऐतिहासिक बन गया। मुगल बादशाह शाहजहां जब उदयपुर से दिल्ली लौट रहा था तब उसका एक पड़ाव यहां पड़ा। उसके लोकानुरंजन के लिए यहाँ के श्रेष्ठ कलाधर्मियों ने शेर का नृत्य-स्वांग प्रस्तुत कर बादशाह का दिल बहलाया और इस बात का भी परिचय दिया कि मेवाड़ी लोग अपनी विराट् सांस्कृतिक परम्पराओं में कितने पैने और पटु हैं। दिखा यह भी दिया कि मेवाड़ी शेर कोई साधारण शेर नहीं है। ऐसे शेर हैं, जो अपने ऊपर सींग भी रखते हैं। यह घटना सन् 1614 की कही जाती है तब से प्रति वर्ष चैत्र कृष्णा त्रयोदशी को यह स्वांग नृत्य किया जा रहा है।[13] इसे देखने आसपास का इलाका ही नहीं दूर-दूर तक से बड़ी संख्या में लोगबाग इकट्ठे होते हैं।

मीरां व चन्द्रसखी के पद

मीरां के भजन इधर सभी जातियों में प्रचलित हैं। निरन्तर गाये जाने वाले पद निरन्तर रचे भी जा रहे हैं। वे सब गायक, जो अनपढ़ है और चर्चित रचनाकार नहीं है, मीरां के पद और गाथा-फलियां लिख-गाकर अपना जीवन बसर कर रहे हैं। पदो के साथ आत्मविभोर करने वाले नृत्य जुड़ गये हैं। अभागों, वंचितों और बेसहारों के बडे.संबल और सहारे बने हुए है ये पद।[14] मीरां की तरह यहाँ चन्द्रसखी के पद भी बड़े चाव से गाये जाते हैं।

काष्ठ कला-कावड़

आजादी के बाद काष्ठ कला के सांस्कृतिक उपादानों में मेवाड़ की पहचान दूर-सुदूर के देशों तक बढाई। इनमें चित्तौड़ जिले का बस्सी गांव उल्लेखनीय है। यह गांव लगभग एक हजार वर्ष प्राचीन है।[15] यहां की बनी कावड़ों ने बड़ा नाम कमाया। ये कावड़ें आठ तथा दस पाट की होती है। चल मंदिर के रूप में कावड़िया भाट कावड़ को बगल में दबाये गांव-गांव, घर-घर फेरी लगाता है और इसके एक-एक पाट पर चित्रित चित्र को गद्य की गायकी में टेर देता उलथाता है। ये चित्र धार्मिक आख्यानों से संबद्ध होते हैं।

कठपुतली

बस्सी के खैरादियों द्वारा निर्मित कठपुतलियों में लालुवा पुतली का विशेष महत्व है। अन्य पुतलियों में रति पुतली, चकरी पुतली, खिलौना पुतली उल्लेखनीय हैं।[16] कठपुतलियों का भ्रम मूलक शिल्प किसी भी कठपुतली खेल का ऐसा विचित्र वैशिष्ट्य है, जिसमें छोटी-छोटी पुतलियां ऐसी लगती हैं जैसे मानव पात्र ही

मंच पर अपना कमाल दिखा रहे हैं। कई बार पुतली और मानव के बीच ऐसी भ्रांति बनी रहती है कि उनकी जुदा-जुदा पहचान ही भुलावे में डाल देती हैं।

मोलेला की प्रतिमाएं

प्रसिद्ध तीर्थ नाथद्वारा से 12 कि.मी. की दूरी पर बसा पुरातन गांव मोलेला माटी से निर्मित लोक देवी-देवताओं की प्रतिमा के लिए जाना-पहचाना गांव है। यह जूना नाथद्वारा के नाम से भी जाना जाता है। यहां के कुम्हार-परिवारों द्वारा निर्मित विविध भांति के लोक देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ राजस्थान तथा पास के गुजरात, मालवा तक के गाँवों में स्थित देवरों में प्रतिष्ठित की जाती है।

तुर्रा, कलंगी ख्याल

लगभग दो सौ वर्ष पूर्व चित्तौड़ में गौड़ ब्राह्मणों ने मिलकर माच ख्यालों की ही नकल पर तुर्रा ख्यालों का एक सधासधाया अखाड़ा स्थापित किया जिसके अगुवा सहेडुसिंह बने।[17] इन्होंने अपनी मंडली बनाई। वादक जुटाये। अच्छे कलाकार इकट्ठे किये और तुर्रा ख्यालों का प्रदर्शन प्रारंभ कर दिया। अपने अखाड़े द्वारा बैठकी ख्यालों की उदात्त परम्परा के निर्वाह के साथ-साथ मंचीय ख्यालों की सशक्त एक नई निराली शैली प्रारंभ की। सैंकड़ों लावणियां लिखी गई और विभिन्न रंगतों-तर्जों में जनता जनार्दन में प्रचलित लोकप्रिय आख्यानों को लेकर ख्यालों की रचना की गई। अखाड़े में अगुवा बने गुरु-उस्ताद कलाकारों को, नर्तकों को, वादकों को विधिवत प्रशिक्षण देते और गांवों में रात-रात भर इनके प्रदर्शन जनता को खासा मनोरंजन देते।

तुर्रा ख्यालों का प्रमुख अखाड़ा चित्तौड़ ही रहा। तुर्राकलंगी का विवाह ख्याल का तो इतना जबर्दस्त प्रभाव पड़ा कि जगह-जगह तुर्रा के समर्थकों की बाढ़ आ गई। वदावदी में आकर लोग अपने यहाँ इसका ख्याल करवाकर तुर्रा की पूरे गांव पर छाप छोड़ते पाये जाते। इस होड़ाहोड़ में मेवाड़ के कई गांवों में तुर्रा-कलंगी समर्थकों के अलग-अलग फिरके हो गये। इनमें डूंगला सबसे अग्रणी रहा। यहां का रतन चौक तुर्रा तथा माणक चौक कलंगी प्रदर्शन के प्रमुख स्थल बने। अन्य गांवों में निम्बाहेड़ा, निकुम्भ, छोटी सादड़ी, बस्सी, बैगूं, सावा, घोसुंडा प्रमुख नामी रहे। कलंगी ख्यालों का मुख्य अखाड़ा चित्तौड़ के पास स्थित घोसुंडा रहा।

फड़ चित्रकला

राजस्थान में फड़ के नाम से प्रचलित चित्रपट पट्ट का ही अपभ्रंश है। फड़ की जगह इसका पड नाम भी प्रचलन में है। सबसे पहले देवनारायण की फड़ बनी। देवनारायण विषयक लोकगाथा में फड़ तथा उसके चित्रण से संबंधित बड़ा ही दिलचस्प प्रसंग मिलता है। इसमें देवनारायण भाट की छींपे से उनकी स्वंय की एक तस्वीर बना लाने को कहते हैं । यह प्रसंग इस प्रकार है-[18] अर्थात देवनारायण भाट से बोले - भाट, चतर छींपा के घर जाओ और मेरी तस्वीर खींचवाकर (बनवाकर) लाओ। भाट जी गये और चतर छींपा से कहा, मेरे कुल भगवान (देवनारायण) की एक तस्वीर कोर दो। छींपे ने भगवान की तस्वीर बनाई किन्तु भाट को पसन्द नहीं आई। भाट ने कहा मैं बताऊ जैसी बना दो। छींपा बोला बताओ। भाट ने चौईस अवतार और जितनी धरती-आसमान में बातें हुई वे सब चित्रित करवा दी। फिर अन्नदाताजी के सामने वल चित्रावली रख दी। अन्नदाता उसे देख बोले-अरे भाट। यह क्या ? मैंने तो एक तस्वीर के लिए कहा था, तुम तो यह क्या ले आये फड़ ही फड़। भाट बोला हां दरबार है तो तस्वीरें ही तस्वीरें। फड़ का अर्थ यहां अनेक तस्वीरों या चित्रों से हैं। यह भी कहा जाता है कि नरवरगढ़ के राजा ने अपनी पुत्री जैवंती का सगपण करने के लिए पुरोहितों को भेजा। पुरोहित बहुत भटके मगर कहीं भी सगपण नहीं हो सका तब जैवंती ने पुरोहितों को अपने पास बुलवाया और चौबीस भाइयों का 'रेखाकंन' देते हुए कहा कि जहां भी ये चौबीस भाई हों वहां जाकर मेरा सगपण कर आना। ये चौईस भाई बाघराव के पुत्र थे। भीलवाड़ा जिले के अंतर्गत आज भी इनके नाम से अलग-अलग गांव बसे हुए हैं जहां के देवरों में प्रतिदिन इनकी प्रतिमाओं की पूजा होती है। ये गांव इस प्रकार हैं-[19] (1) तेजा जी का पाटणा, (2) बहाराव का बागौर, (3) बनाराव का बदनोर, (4) ऊंटाराव का ऊंटाली, (5) खेताराव का खेजड़ी, (6) आसाराव का आसींद, (7) पराराव का परावली, (8) हादाराव का हावदड़ा, (9) कराराव का कारोई, (10) सांगाराव का सांगानेर, (11) कोड़राव का कुवाड़ी, (12) मांडाराव का मांडल, (13) सवाई भोज का दड़ावट, (14) नीयाराव का नैगड़िया, (15) माखाराव का माकड़या, (16) नींबाराव का नींबेड़ा, (17) झालाराव का झाल्या, (18) काणाराव का कणवा, (19) रद्धाराव का रदरपुरा, (20) गागाराव का गागेड़ा, (21) गाडाराव का गाडरमाला, (22) कीड़ाराव का कीड़ीमाला, (23) चनाराव का चैनपुरा, (24) पांदाराव का पांदल कहते हैं, आगे जाकर रेखांकन का यह आधार फड़ चित्रण का मुख्य आधार बना।

फड़ में अंकित चित्रों की प्रस्तुति और इस ढंग से संयोजित की गई होती है कि संपूर्ण फड़ ही एक रंगमंच का आभास देती है। चित्रों की रेखाएं, उनका भरण, उनका रंग वैशिष्ट्य, उनका बाह्य परिवेश और प्रकृति संयुक्त वातावरण सब मिलकर एक पूरे

नाटक की प्रतीति देते हैं। तब दर्शकों को ऐसा लगता है जैसे वे सारे घटनाक्रम को कल्पना में नहीं देखकर, साक्षात् देख रहे हैं। भोपा अपनी विशिष्ट गायकी और नृत्याभिनयी मुद्रा में जिस चित्र को छुवाता है, वह चित्र मुंह बोलने लग जाता हैं और ऐसा लगने लगता है कि जैसे वह चित्र नहीं होकर रंगमंच पर एक पात्र के रूप में अपना नाटकीय रंग बिखेर रहा है। फड़ निर्माता श्रीलाल जी ने बताया कि भीलवाड़ा के पास वाला पुर गांव फड़ चित्रण का मूल गांव था। यह तब पुर मांडल कहलाता था। जब बादशाह शाहजहां ने शाहपुरा बसाया तब उसने मेवाड़ के कलाकार मांगे। महाराणा ने तब इनके परिवार के पांचाजी को वहां भेजा। इनके परिवार में यों तो सभी अच्छे कलाकार थे किन्तु धूलजी के दोनो पुत्र टेकचंदजी व मुकुंद जी ने फड़ की चित्रकारी में बड़ा नाम कमाया। तब के जागीरदारों के ठिकानों में दीवालों पर कई जगह इनकी चित्रकारी की हुई मिलती है। शाहपुरा पहले फूलिया परगने में था। सन् 1629 में शाहजहां ने पट्टा देकर इसे अलग से रियासत बनाई। यही नहीं, श्रीलाल जी ने मास्को, स्वीडन, जापान, पाकिस्तान, नेपाल आदि देशों में भी फड़ चित्रकारी का खूब काम किया। जापान में तो फड़ विषयक बनाया गया एक खाका ही चालीस हजार रुपये में बिका। भारत सरकार के डाक तार विभाग ने इनके बने फड़ चित्र का एक बहुरंगी डाक टिकट भी जारी किया जो इनके बहुमान का प्रतीक है।

रंगाई-छपाई एवं पहनावा

आकोला के रंगे छपे-वस्त्रों ने मेवाड़, मेवल, नला, भोमट, मगरा, सेहरा, सेजा, छप्पन आदि क्षेत्रों में अपनी विशिष्ट पहचान देते हुए राज्य और राष्ट्र की सीमा को भी पार किया है। यहां के फेंटिये, नानणे, बंदागल, बंधेज, सोसन्ये, फूमड़िये, चूंदड़े तथा पोमचे सब कहीं रमणियों के चित को रमाने वाले, रंग देने वाले और रससिक्त करनेवाले हैं। छपाई के वस्त्रों में फेंट्ये, नांदणे, सोसने, चोले, जाड्ये आदि प्रमुख है। ओढनों में चूंदड़, बंदागल तथा मोतीकोर नामक ओढने प्रसिद्ध है। महिलाओं के पहनावे में पोत का बनाया जाने वाला ओढ़ना, सवा पाटिया, डेढ़ पाटिया, पौने दो पाटिया तथा दो पाटिया तक का होता है। लाल रंग के ओढने को **चूंदड़** कहते हैं। यह ढ़ाई गज लम्बी और पौने दो गज चौड़ी होती है। चूंदड़े कई प्रकार की होती है। इनमें केरी, पुतली, मकई, जवार, फूल, चौकड़ी, बाड़ी, डाबा, मोतीचूर तथा एक डाली भांत चूंदड़ अधिक प्रचलित हैं। रंगों में काले रंग तथा लाल रंग की चूंदड़ी बड़ी प्रसिद्धि लिये है। **फागणिया** शिशिर ऋतु का परिधान है। होली पर बसंतिया, फागणिय तथा नाना प्रकार के रंगाई बंधाई तथा छपाई के फागणिये प्रचलित हैं। **लहरिया** सावन में ओढा जाता है। पीलिया पुत्रजन्म के पश्चात प्रथम होली पर पीहरवालों की ओर से भेजा जाता है। अकोला के नंदलाल छींपा ने इस कला को नया मोड़ देकर न केवल देश में अपितु विदेशों में भी पहचान बनाई। उन्होंने अनेक प्रयोग किये। उनके द्वारा निर्मित कपड़े आकोला प्रिन्ट नाम से जाने जाते हैं। फैशन के अनुसार कपड़ों की छपाई के साथ-साथ उन्होंनें चद्दरों, साड़ियों, बिछौने, बेडशीट्स, टेबल क्लॉथ, लूंगी, पर्दे, तकिया कवर, चुन्नी आदि का बाजार बनाया।[20] पर्यटन उद्योग के विकास में महत्वपूर्ण यह भी है कि न केवल पर्यटन सुविधाओं का विस्तार किया जाये बल्कि अनुकूल व स्वच्छ परिवेश का भी निर्माण किया जाय। इस संदर्भ में योग्य गाइडों का प्रशिक्षण उपरान्त नियुक्ति, क्षेत्र की सांस्कृतिक गरिमा से परिचित कराने इसे मेले, लोकोत्सवों आदि का आयोजन आदि महत्वपूर्ण बाते हैं, जिनसे मेवाड़ के लोक संस्कृति पर आधारित पर्यटन का विकास किया जा सकता है। पर्यटन उद्योग अनेक संभावनाओं से जुड़ा है जिसमें आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय कार्यक्रम सन्निहित हैं। पर्यटन केन्द्र आज आवश्यकतानुसार पारिस्थितिकी विकास एवं सविकास की अवधारणा के अनुकूल रोजगारमूलक एवं भारतीय संस्कृति के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं।

पर्यटन विकास कार्यक्रम एवं सुझाव

राजस्थान में पर्यटन को उद्योग का दर्जा प्रदान किये जाने के पश्चात पर्यटन का तेजी से विकास हुआ है । इस संदर्भ में राजस्थान के पर्यटन विकास विभाग निगम एवं संस्कृति विभाग की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। पर्यटन विभाग, विशेष क्षेत्र विकास प्राधिकरण एवं सांस्कृतिक विभाग द्वारा यह कार्य जहां पर्यटन स्थलों का विकास करके, नये पर्यटन स्थलों की खोज करके, पर्यटकों का प्रचार प्रसार द्वारा वहां आकृष्ट करके तथा मेले त्यौहार के माध्यम से लोक संगीत व लोक कलाओं को पर्यटकों के सम्मुख प्रस्तुत करके सम्पादित किया जाता है, वहीं पर्यटकों हेतु मेवाड़ के ग्रामीण पर्यटन केन्द्रों में आवास परिवहन सुविधा आदि कराकर भी किया जा सकता है। लोक संस्कृति के प्रदर्शन, प्रोत्साहन एवं उसके संरक्षण को महत्व दिया जाय अन्यथा हमारी प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर लुप्त हो जायेगी। इस बात की भी आवश्यकता है कि इस क्षेत्र में निजी निवेश को प्रोत्साहित किया जाय एवं उन्हें पर्याप्त सुविधायें वरियतायें मुहैया कराई जायें। पर्यटन का प्रबन्ध प्रभावी नहीं है, इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि राज्य में पर्यटन के प्रबंधकीय ढाँचे को सुदृढ़ किया जाये ताकि पर्यटन से जुड़े सभी पक्षों को समुचित प्रोत्साहन एवं सहयोग मिल सके।

पर्यटन विकास की दिशा इस प्रकार तय की जाय कि राज्य में पर्यटन उद्योग के विकास से हमारी लोक सांस्कृतिक विरासत का क्षय न हो। कहने का तात्पर्य यह है कि पर्यटन का विकास हमारी पारम्परिक सांस्कृतिक धरोहर व परम्परा के अनुसार हो। इससे न केवल सांस्कृतिक परम्पराओं का संरक्षण होगा बल्कि पर्यटन उद्योग को भी एक नई दिशा मिलेगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एरस्काइन के.डी.- ए गजेप्यिर आफ द उदयपुर स्टेट, पृ.सं. 5
2. सामर देवीलाल व भानावत महेन्द्र- राजस्थान के लोक धर्मी नाट्य परम्परा, राजस्थान वैभव, पृष्ठ सं. 19.
3. वही, पृष्ठ सं. 30
4. वही, पृष्ठ सं. 38
5. जोशी वनराज, जोशी बालकृष्ण- उदयपुर डॉयरेक्ट्री, पृष्ठ सं. 64
6. भानावत महेन्द्र- राजस्थान लोक नाट्य गवरी उद्भव और विकास, पृष्ठ सं. 20
7. वही, पृष्ठ सं. 22
8. भानावत महेन्द्र- लोक नाट्य परम्परा और प्रवृत्तियां, पृष्ठ सं. 85
9. सामर देवीलाल- राजस्थान के लोकधर्मी नाट्य परम्परा राजस्थान वैभव, पृष्ठ सं. 184
10. जोशी वनराज, जोशी बालकृष्ण- उदयपुर डायरेक्ट्री, पृष्ठ सं. 62
11. भानावत महेन्द्र- लोक नाट्य परम्परा और प्रवृत्तियाँ, भाग-21-22, पृष्ठ सं. 25
12. भानावत, महेन्द्र- कामड़ तेरातली नाट्य लेख शोध पत्रिका, वर्ष 14, अंक 3, पृष्ठ सं. 182
13. सामर देवीलाल- राजस्थान में लोकधर्मी नाट्य परम्परा, राजस्थान वैभव, पृष्ठ सं. 198
14. भानावत महेन्द्र- लोक रंग, पृष्ठ सं. 197
15. भानावत महेन्द्र- कामड़ तेरातली नाट्य लेख शोध पत्रिका, वर्ष 14, अंक 3, पृष्ठ सं. 186
16. सामर देवीलाल- राजस्थान में लोकधर्मी नाट्य परम्परा, राजस्थान वैभव, पृष्ठ सं. 198
17. भानावत महेन्द्र- लोक नाट्य परम्परा और प्रवृत्तियां, भाग 21-22, पृष्ठ सं. 85
18. भानावत महेन्द्र- लोक रंग, पृष्ठ सं. 195
19. वही, पृष्ठ सं. 196
20. मोहनलाल गुप्ता- राजस्थान पिलेक्यर सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक, भाग-1, जोधपुर-2004, पृष्ठ सं. 60